International Journal of Applied Research 2014; 1(1): 343-344

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2014; 1(1): 343-344
www.allresearchjournal.com
Received: 10-10-2014
Accepted: 24-11-2014

डॉ. अरविन्द मैन्दोला
सह–आचार्य, चित्रकला, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अरविन्द मैन्दोला
सह–आचार्य, चित्रकला, राजकीय महाविद्यालय, बून्दी, राजस्थान, भारत

पूर्व एवं पश्चिम में कला की अवधारणा

डॉ. अरविन्द मैन्दोला

प्रस्तावनाः

कला की अवधारणा या व्याख्या के लिये यह एक असामान्य दौर है, क्योंकि मानव जीवन के बारें में कही गयी विश्वसनीय लगने वाली व्याख्या तत्काल अपर्याप्त और स्वतः अतार्किक सिद्ध हो जाती है या कर दी जाती है। कोई भी विचार अन्तिम विचार या व्याख्या नही रही है। उद्धाम परिवर्तनों का असर कलाओं पर भी दिखाई देता है। वर्तमान में महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में कला की परिभाषा वर्गीकरण या व्याख्या का इतिहास पढ़ाया जाता रहा है वह पूर्णतः नही तो अधिकाशतः पश्चिमी दर्शन पर आधारित है।

भारतीय वर्ष में कला की अवधारणा बहुत प्राचीन रही है परन्तु कला सिद्धान्तों का विस्तृत वर्गीकरण बहुत बाद में मिलता है। वेदों में कला शब्द खण्ड के रूप में (यथा कला यथा शफं– ऋग्वेद, अष्ठम् मंडल) तंत्र शास्त्र में रहस्यात्मक तत्व, शैवागम में कला, राग आदि के रूप में प्रयोग में लिया जाता रहा है। उत्तर वैदिक काल में भारत में 64 कलाऐं एवं 14 विधायें प्रसिद्ध रही है। भरत नाट्यशास्त्र में ''न सा विद्या ना सा कला'' और अभिनव गुप्त की टीका में ''कला गीतवाद्यादिका'' कला को वर्णित किया गया है। पश्चिम में शास्त्र, विज्ञान या कला इस पर अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र आदि में स्पष्टतः दो वर्ग के रूप में विज्ञान और कला वर्गीकृत किये गये है।

महाकवि कालीदास ने ''प्रिय–शिष्या ललिते कलाविद्यौ'' (रघुवंश) में ललित कला का आशय स्पष्ट किया है जिसमें पश्चिमी विचारधारा नही मानना चाहियें। हिन्दी व्याकरण में भी ''कलन् कला'' उत्पत्ति से माना जा सकता है। वात्सायान् के ''कामसूत्र'' (ईसा की पहली शताब्दी) और ''ललित विस्तार'' ग्रन्थ में 86 और राजशेखर के प्रबन्ध–कोष में 72 कलाओं का वर्णन मिलता है। इसी समय से विद्या और कला में भी भेद और परिभाषा भी स्पष्टतः प्रतीत होने लगता है।

कामसूत्र में वर्णित व्याख्या से कला सिद्धान्तों का उद्गम माना जाता रहा है। इस समय तक कौशल, विद्या, कला आदि की परिभाषा भेद स्पष्ट हो चुके थे। परन्तु वर्गीकरण के सन्दर्भ में स्पष्ट संकेत प्राप्त नही होते है। भारतवर्ष में कामसूत्र के क्रमानुसार कलाओं का क्रम गीत, वाद्य, नृत्य, आलेख्य, विशेष कच्छेद्य आदि से प्रारम्भ होती है। पूर्व में वास्तु विद्या, नाट्यविद्या, कामशास्त्र आदि कला या विद्या है, इसका वर्गीकरण स्पष्ट नही है। इस समय मुख्य चार पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में सारे प्रतिपादक शास्त्र वगीकृत थे। विभिन्न विद्यायें तीनों पुरूषार्थों में सहायक होती थी और कलाऐं ''काम पुरूषार्थ'' में। इस तरह से जिन विद्याओं का वर्णन प्रतिपादक शास्त्र प्रारम्भ से धर्मशास्त्र या अर्थशास्त्र के अंग के रूप में लिखा गया वे विद्यायें ही थी जिसका वर्गीकरण शास्त्रों में मिलता है जैसे वास्तुशास्त्र, अर्थशास्त्र, मंदिर–निर्माण, धर्मशास्त्र और शेष कलाएं कामशास्त्र में अंग कलाऐं कहलाती थी। कोटिल्य के अर्थशास्त्र में नगर–निमार्ण, दुर्ग–निर्माण, कोषागृह–निर्माण, राजगृह–निर्माण पर अलग–अलग अध्यायों पर शास्त्रों के रूप में वर्णन प्राप्त होता है।

भारतवर्ष में कलाओं को सीमित दायरें में बांधा गया है, पाक कला, केश सज्जा, पुष्प–सज्जा कलाओं में सम्मिलित है विद्या या कला में भेद नही मिलता है। यह सभी पश्चिमी अवधाराणाओं का ही परिणाम है कि उन्हें अलग–अलग रूप में वर्गीकृत किया गया है। भारतवर्ष में व्यावहारिक कलाएं कोशल मात्र माने गये थे, जिन्हें क्राफ्ट कहा गया है। इनसे सम्बन्धित सिद्धान्त शिल्प–सिद्धान्त के रूप में पुराणों में मिलते है जिसमें मत्स्य–पुराण (मूर्त्ति निमार्ण, दुर्ग निमार्ण, भवन निमार्ण) गरूड़ पुराण, अग्नि पुराण भी प्रमुख रूप से है। कलाओं का विस्तृत विवेचन (विष्णुधर्मोत्तर–पुराण 5 वी श.) में संगीत एवं वाद्य, नाट्य शाला निर्माण में मिलता है। ये सभी हमारे यहाँ धर्म के अभिन्न अंग के रूप माने गये है और इनसे सम्बन्धित सिद्धान्त यथा शुल्ब–सूत्र, भोजराज, मंडल सूत्रधार आदि ग्रंथ मध्य काल में लिखे गये है और पश्चिम में इन्हें कला के वर्गीकरण के रूप में प्राप्त होता है अतः वर्तमान में कलाओं की परिभाषा जो आज मूलतः प्राप्त होता है वह पश्चिमी विचारधारा का ही परिणाम प्रतीत होती है।

यूनान के महान चिन्तक सुकरात, प्लेटो, अरस्तु से यूनान की चिन्तन परम्परा की शुरूआत होती है, जो कला, विज्ञान, एवं प्रकृति को अलग–अलग करती है। यहां दो सिद्धातों का नियम निर्धारित किये गये है। एक अनुकरण–सिद्धान्त (माईमीसिरा) दूसरा सौन्दर्य पर आधारित सिद्धान्त प्रकृति का मूल ज्ञान प्राप्त करने का ज्ञान शास्त्र विज्ञान है और उसका अनुकरण करना ही कला कहा गया है। इसीलिये ''इमेटेशन ऑफ ब्यूटीफूल नेचर'' की परिभाषा बनी। मूलतः 19 वी सदी तक इसी अवधारणा पर सम्पूर्ण पश्चिमी कला अवधारणऐं आधारित प्रतीत होती है।

कला की ये अवधारणाऐं यूनान और रोम होते हुये यूरोप आयी और इसमें अनेकोनेक परिवर्तन आये। इन्ही अवधारणाओं के आधार पर नाटक को कला कहा गया। परन्तु भारत में नाट्य को अनुकरण माना गया है अतः इसे कला के अर्न्तगत नही लिया गया है। वात्सायान् के अनुसार नाट्क कला नही है वह शास्त्र है उसे देखना या नेपथ्य–रचना ही कला है। यह अनुकरण–सिद्धान्त 19 वीं सदी तक कला के एकमात्र रूप में विश्व में भी प्रतिष्ठित रहा है। 19 वीं सदी में तोल्सतोय ने ''व्याट इज आर्ट'' ग्रन्थ में भावना या अनुभूति का संक्रमण को भी कला का ही उद्देश्य माना। यह परिभाषा ''इनफैक्शन थ्योरी'' के नाम से भी जानी जाती है। इसके उपरान्त क्रोंचे ने अभिव्यक्ति–सिद्धान्त के अनुसार अनुभूति की अभिव्यक्ति को कला माना है।

18 वीं सदी के बाद ललित कला और उपयोगी कला को दो वर्गों में विभाजित किया गया। 18वीं सदी में दलेम्बर्त द्वारा डान्स के आर्केटेक्चर जोड़ दिया गया, तब से वहाँ स्थापत्य और मूर्तिकला को ललित कलाओं में सम्मिलित कर लिया गया और तभी से चित्रकला, कविता, संगीत, स्थापत्य, मूर्तिकला ये पाँच ललित कलाएं स्थापित हुयी। संगीत, कविता में और नृत्य को संगीत में लिया गया।

भरत के नाट्य–शास्त्र (रस–सिद्धान्त) मानव मन पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करता है। इसी तरह अनेकों विद्वानों ने काव्य–शास्त्र के क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिक प्रभावों में रस की अनुभूति मानव मन पर किस प्रकार कार्य करती है इसकी विस्तृत व्याख्या की गयी है। परन्तु अन्य कलाऐं जैसे संगीत, मूर्तिकला, चित्रकला के आस्वादन की प्रक्रिया का इतना सैद्धान्तिक विवेचन भारतवर्ष में नही के बराबर मिलता है।

युनान के दुखांत नाट्क और उदात्त महाकाव्य विश्व साहित्य में प्रसिद्ध है उनकी समीक्षा प्लेटो, अरस्तु जैसे विद्वानों ने काव्य और नाटक का मन पर प्रभावों की विस्तृत व्याख्या की है। इसी क्रम में अरस्तु ने विरेचन–सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसकी व्याख्या अनेकों विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से की है। भारतवर्ष में एतसम्बन्धी चिन्तन पूर्णतः मानव केन्द्रित रहा है। यहाँ भरत के नाट्यशास्त्र द्वारा नाटक को ''पंचम वेद'' कहकर दैवी आधार दिया है और काव्यशास्त्रीयों के के रसास्वाद को ''ब्रह्मास्वाद–सहोदर'' कहकर संगीत और चित्रकला आदि का विवेचन एक साधन के रू॰ में ही किया गया। साध्य के रूप में नहीं। सम्पूर्ण कला का चिन्तन और उसका आनन्द का समस्त विवेचन मानव केन्द्रय रहा है। इसके विपरीत पश्चिम में कला को प्रकृति के अनुकरण के सिद्धान्त के रूप में कला को वग्रीकृत किया गया है। सौन्दर्य परक चिन्तन कला के साथ–साथ काव्य एवं अन्य कलाओं पर भी स्थापित किया गया। सभी युनानी विद्वानों ने कलाओं को सौन्दय पर आधारित माना है। इसके विपरीत भारतीय विद्वानों ने जगन्नाथ पंडितराज, अभिनव गुप्त आदि ने काव्यास्वाद में मानव मन पर कलाओं के प्रभावों की मनोवैज्ञानिक मीमांसा विस्तार से की है। इसी प्रकार पाश्चात्य् जगत में अपने मौलिक चिंतन द्वारा इस प्रकार की विवेचना को ठोस आधार देने वाले विद्वान आई.ए.रिचर्डस रहे है, जिन्होंने कविता और नाटक के मनोवैज्ञानिक प्रभावों का विश्लेषण किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1. कलानाथ शास्त्रीः– कला की अवधारणा, प्राच्य और पाश्चात्य
2. हेमन्त शेषः– सौन्दर्य शास्त्र के प्रश्न पृष्ट–108
3. कलानाथ शास्त्रीः–कला की अवधारणा, पृष्ट–111
4. डॉ. गिरिराज किशोर अग्रवालः– भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास